पूरक वाचन

1 वापसी

उषा प्रियंवदा

(जन्म : सन् 1930 ई.)

उषाजी का जन्म कानपुर में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. तथा पी.एच.डी. की पढ़ाई पूरी की। उन्होंने दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। वहीं से उन्हें फूलब्राईट स्कॉलरशिप प्राप्त हुई। उन्होंने अमरीका के ब्लूमिंगटन इंडियाना में दो वर्ष पोस्ट डॉक्टरल अध्ययन किया। सन् 1964 में विस्कांसिन विश्वविद्यालय मैडिसन के दक्षिण एशियाई विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद पर काम किया। सेवा-निवृत्त होकर वे स्वतंत्र लेखन कर रही हैं।

उनके पाँच उपन्यास एवं सात कहानीसंग्रह प्रकाशित हैं। उन्हें वर्ष 2008 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। अभी वे यू. एस. ए. में रहती हैं।

'वापसी' कहानी दो पीढ़ियों के अन्तराल को स्पष्ट करती है। रिटायरमेंट के बाद गजाधर बाबू बड़ी आत्मीयता के साथ परिवार के संग रहने घर लौटे थे। बीबी-बच्चों के साथ रहने की जिजीविषा लेकर आये थे। मध्यवर्गीय परिवार ने गजाधर बाबू के सारे सपने तहस-नहस कर दिए। वे बुरी तरह आहत हुए। 'वापसी' में अपनों के असह्य व्यवहार का बड़ा मार्मिक चित्रण लेखिका ने किया है।

गजाधर बाबू ने कमरे में जमे सामान पर एक नज़र दौड़ाई दो बक्स, डोलची, बालटी - ''यह डिब्बा कैसा है गनेशी?'' उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ; कुछ गर्व, कुछ दुख, कुछ लज्जा से बोला, ''घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबूजी को पसन्द थे, अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पाएँगे।'' घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया; जैसे एक परिचित, स्नेही, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था।

''कभी-कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहिएगा।'' गनेशी बिस्तर में रस्सी बाँधता हुआ बोला।

''कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गनेशी। इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।''

गनेशी ने अँगोछे के छोर से आँखें पोंछी, ''अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा! आप यहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।''

गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान-पहचान के लोग ले गए थे और जगह-जगह मिट्टी बिखरी थी। पर पत्नी, बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे - बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था; बड़े लड़के अमर और लड़की कान्ति की शादियाँ कर दी थीं; दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्राय: छोटे स्टेशनों पर रहे; और उनके बच्चे और पत्नी शहर में; जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हँसते-बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते। उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहतीं। दोपहर में, गरमी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम-गरम रोटियाँ सेंकती। उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती; और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके-हारे बाहर से आते, तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आतीं; और उनकी सलज्ज आँखें मुस्करा उठतीं। गजाधर बाबू को तब, हर छोटी बात भी याद आती और वह उदास

हो उठते... अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था, जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी । जूते खोलकर नीचे खिसका दिए। अन्दर से रह-रहकर कहकहों की आवाज़ आ रही थी, इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गई। उसी तरह मुस्कराते हुए, वह बिना खाँसे अन्दर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गए किसी नृत्य की नकल कर रहा था; और बसंती हँस-हँसकर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन-बदन, आँचल या घूँघट का कोई होश न था और वह उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। गजाधर बाबू को देखते ही नरेन्द्र धप्-से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुँह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढँक लिया, केवल बसंती का शरीर रह-रहकर हँसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, ''क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी?'' ''कुछ नहीं बाबूजी।'' नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए। उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले, ''बसंती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मा की पूजा अभी चल रही है क्या?''

बसंती ने माँ की कोठरी की ओर देखा, ''अभी आती ही होंगी,'' और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गई थी। अब नरेन्द्र भी चाय का आखिरी घूँट पीकर उठ खड़ा हुआ। केवल बसंती, पिता के लिहाज में, चौके में बैठी माँ की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी; फिर कहा, ''बिट्टी - चाय तो फीकी है।''

''लाइए, चीनी और डाल दूँ।'' बसंती बोली।

''रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आएँगी, तभी पी लूँगा।''

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिये निकलीं और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसंती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, ''अरे, आप अकेले बैठे हैं- यह सब कहाँ गए?'' गजाधर बाबू के मन में फाँस-सी करक उठी, ''अपने-अपने काम में लग गए हैं- आखिर बच्चे ही हैं।''

पत्नी आकर चौके में बैठ गई। उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, ''सारे धर में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम-करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।'' फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोलीं, ''बहू ने भेजा होगा बाज़ार।'' और एक लम्बी साँस लेकर चुप हो रहीं।

गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इन्तज़ार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज़ सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गर्म-गर्म पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के गिलास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।

पत्नी का शिकायत-भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुँचा। वह कह रही थीं, ''सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है। इसी गिरस्थी का धन्धा पीटते-पीटते उमर बीत गई। कोई ज़रा हाथ भी नहीं बँटाता।''

''बहू क्या किया करती है?'' गजाधर बाबू ने पूछा।

''पड़ी रहती है। बसंती को तो, फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।''

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसंती को आवाज़ दी। बसंती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, ''बसंती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएँगी।''

बसंती मुँह लटकाकर बोली, ''बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।''

गजाधर बाबू ने बड़े प्यार से समझाया, ''तुम सवेरे पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं; दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।''

बसंती चुप रह गई। उसके जाने के बाद, उसकी माँ ने धीरे से कहा, ''पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी ही नहीं लगता। लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं। बड़े-बड़े लड़के हैं उस घर में, हर वक्त वहाँ घुसा रहना मुझे नहीं सुहाता। मना करूँ तो सुनती नहीं।''

नाश्ता कर गज़ाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े, कभी-कभी अनायास ही, इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आतीं और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।

घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब अपना प्रबन्ध किया था। उनकी पत्नी के पास अन्दर एक छोटा कमरा अवश्य था। पर उसमें एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्टर और घी के डिब्बा से घिरा था - दूसरी ओर पुरानी रज़ाइयाँ, दरियों में लिपटीं और रस्सी से बँधीं रखी थीं, उसके पास एक बड़े-से टिन के बक्स में घर भर के गरम कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आया बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था, कुर्सियों पर नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लम्बी शिकायत करनी होती, तो अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थीं। तो वह एक दिन चटाई लेकर आ गई। गजाधर बाबू ने घर-गृहस्थी की बातें छेड़ीं। वह घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हलके-से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्च कम होना चाहिए।

''सभी खर्च तो वाजिब-वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ? यही जोड़-गाँठ करते-करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा।''

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करतीं, यह स्वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय-बात की जाती कि प्रबन्ध कैसे हो, तो उन्हें चिन्ता कम, संतोष अधिक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।

''तुम्हें किसी बात की कमी है अमर की माँ घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं, सिर्फ रुपये से ही आदमी अमीर नहीं होता।'' गजाधर बाबू ने कहा और कहने के साथ ही अनुभव किया। यह उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति थी ऐसी कि उनकी पत्नी नहीं समझ सकतीं। ''हाँ, बड़ा सुख है न बहू से। आज रसोई करने गई है। देखो क्या होता है'' कहकर पत्नी ने आँखें मूँदीं और सो गईं। गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गए यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक निस्संग दृष्टि से पत्नी को देखते रहे और फिर लेटकर छत की ओर ताकने लगे।

अन्दर कुछ गिरा और उनकी पत्नी हड़बड़ाकर उठ बैठीं, ''लो बिल्ली ने कुछ गिरा दिया शायद!'' और वह अंदर भागीं थोड़ी देर में लौटकर आईं तो उनका मुँह फूला हुआ था - ''देखो बहू को, चौका खुला छोड़ आई, बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। सभी तो खाने को हैं, अब क्या खिलाऊँगी?'' वह साँस लेने को रुकीं और बोलीं, ''एक तरकारी और चार पराँठे बनाने में सारा डिब्बा घी उँड़ेलकर रख दिया। जरा-सा दर्द नहीं है, कमाने वाला हाड़ तोड़े और यहाँ चीजें लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम, किसी के बस का नहीं है?''

गजाधर बाबू को लगा कि पत्नी कुछ और बोलेंगी तो उनके कान झनझना उठेंगे। ओठ भींच, करवट लेकर उन्होंने पत्नी की ओर पीठ कर ली।

रात का भोजन बसंती ने जान-बूझकर ऐसा बनाया था कि कौर तक निगला न जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खाकर उठ गए। पर नरेन्द्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ और बोला, ''मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता''। बसंती तुनककर बोली, ''तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है।''

''तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था?'' नरेन्द्र चिल्लाया।

''बाबूजी ने।''

''बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।''

बसंती को उठाकर माँ ने नरेन्द्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बनाकर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा, ''इतनी बड़ी लड़की हो गई और उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया।''

''अरे आता सब कुछ है, करना नहीं चाहती,'' पत्नी ने उत्तर दिया। अगली शाम माँ को रसोई में देख, कपड़े बदलकर बसंती बाहर आई तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया, ''कहाँ जा रही हो?''

''पड़ोस में, शीला के घर।'' बसंती ने कहा।

''कोई ज़रूरत नहीं है, अन्दर जाकर पढ़ो।'' गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कुछ देर अनिश्चित खड़े रहकर बसंती अन्दर चली गई। गजाधर बाबू शाम को रोज़ टहलने चले जाते थे। लौटकर आए तो पत्नी ने कहा, ''क्या कह दिया बसंती से? शाम से मुँह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।''

गजाधर बाबू खिन्न हो आए। पत्नी की बात का उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसंती की शादी जल्दी ही कर देनी है। उस दिन के बाद बसंती पिता से बची-बची रहने लगी। जाना होता तो पिछवाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो-एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला, ''रूठी हुई है।'' गजाधर बाबू को और रोष हुआ। लड़की के इतने मिज़ाज, जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं। फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी कि अमर अलग रहने की सोच रहा है।

''क्यों?'' गजाधर बाबू ने चकित होकर पूछा।

पत्नी ने साफ-साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थीं। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं। कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बैठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी वह छोटा-सा समझते थे; और मौके-बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब-तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थीं। ''हमारे आने के पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी?'' गजाधर बाबू ने पूछा। पत्नी ने सिर हिलाकर जताया कि नहीं। पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था- बहू को कोई रोक-टोक न थी। अमर के दोस्तों का प्राय: यहीं अड्डा जमा रहता था और अन्दर से नाश्ता-चाय तैयार होकर जाता रहता था। बसंती को भी वही अच्छा लगता था।

गजाधर बाबू ने बहुत धीरे से कहा, ''अमर से कहो, जल्दबाज़ी की कोई ज़रूरत नहीं है।''

अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है। अन्दर आकर पूछने वाले ही थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अन्दर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुँह खोला कि बहू कहाँ है, पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झाँका तो अचार, रज़ाइयों और कनस्टरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतरा और कहीं टाँगने को दीवार पर नज़र दौड़ाई। फिर उसे मोड़कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर, एक किनारे टाँग दिया। कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। कुछ भी हो, तन आखिरकार बूढ़ा ही था। सुबह-शाम कुछ दूर टहलने अवश्य चले जाते; पर आते-आते थक उठते थे। गजाधर बाबू को अपना बड़ा-सा, खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चिंत जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल-पहल, चिरपरिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट्-खट्, जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफान और डाक गाड़ी के इंजनों की चिग्घाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल की मिल के कुछ लोग कभी-कभी पास आ बैठते; वही उनका दायरा था; वही उनके साथी। वह जीवन अब

उन्हें एक खोई निधि-सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली।

लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी-सी झड़प, बालटी पर खुले नल की आवाज़, रसोई के बरतनों की खटपट और उसी में दो गौरेयों का वार्तालाप; और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई, तो वहाँ चले जाएँगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेसी की तरह पड़े रहेंगे... और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेन्द्र माँगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपये दे दिए; बसंती काफी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा; पर उन्हें सबसे बड़ा ग़म यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन-ही-मन कितना भार ढो रहे हैं, इससे वह अनजान ही बनी रहीं। बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शान्ति ही थी। कभी-कभी कह भी उठतीं, ''ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं। हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे।''

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त-मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिंदूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई हैं कि अब वही उनकी सम्पूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केन्द्र नहीं हो सकते। उन्हें तो अब उनकी शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया। किसी बात में हस्तक्षेप न करने के लिए निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गई।

इतने सब निश्चयों के बावजूद गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थीं, ''कितना कामचोर है, बाज़ार की हर चीज़ में पैसा बनाता है, खाने बैठता है, तो खाता ही चला जाता है।'' गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन-सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है। पत्नी की बात सुनकर लगा कि नौकर का खर्च बिलकुल बेकार है; छोटा-मोटा काम है, घर में तीन मर्द हैं, कोई-न-कोई कर ही देगा; उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली, ''बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।''

''क्यों?''

''कहते हैं खर्च बहुत है।''

यह वार्तालाप बहुत सीधा-सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। आलस्य में, उठकर बत्ती भी नहीं जलाई। इस बात से बेखबर नरेन्द्र माँ से कहने लगा, ''अम्मा, तुम बाबूजी से कहतीं क्यों नहीं? बैठे-बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँगा, तो मुझसे यह नहीं होगा।'' ''हाँ अम्माँ''- बसंती का स्वर था, ''मैं कॉलेज भी जाऊँ और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊँ, यह मेरे बस की बात नहीं है।''

''बूढ़े आदमी हैं,'' अमर भुनभुनाया, ''चुपचाप पड़े रहें। हर चीज़ में दखल क्यों देते हैं!'' पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा, ''और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गई तो पन्द्रह दिन का राशन पाँच दिन में बनाकर रख दिया।'' बहू कुछ कहे इससे पहले वह चौके में घुस गईं। कुछ देर में अपनी कोठरी में आईं और बिजली जलाई तो गजाधर बाबू को लेटे देख बड़ी सिटपिटाईं। गजाधर बाबू की मुखमुद्रा से वह उनके भावों को अनुमान न लगा सकीं। वह चुप, आँखें बन्द किए लेटे रहे।

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिये अंदर आए और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिये निकलीं और आँचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुईं। गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, ''मुझे सेठ रामजीमल की चीनी-मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने मना कर दिया था।'' फिर कुछ रुककर, जैसे बुझी हुई आग में एक चिनगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, ''मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?''

''मैं?'' पत्नी ने सकपकाकर कहा, ''मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की...''

बात बीच में काट गजाधर बाबू ने थके, हताश स्वर में कहा, ''ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।'' और गहरे मौन में डूब गए।

नरेन्द्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बाँधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टिन का बक्स और पतला-सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिये गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पड़ा। उनके जाने के बाद सब अन्दर लौट आए। बहू ने अमर से पूछा, ''सिनेमा ले चलिएगा न?'' बसंती ने उछलकर कहा, ''भइया, हमें भी।''

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गईं। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाईं और कनस्तरों के पास रख दिया; फिर बाहर आकर कहा, ''अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।''

2 दो कलाकार

भगवतीचरण वर्मा

(जन्म : सन् 1903 ई. : निधन : सन् 1981 ई.)

भगवतीचरण वर्मा का जन्म उन्नाव जिले के शफीपुर गाँव (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. ए., एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे पत्रकारिता एवं आकाशवाणी से सम्बद्ध रहे। स्वतंत्र लेखन की वृत्ति अपनाकर वे लखनऊ में बस गये। उन्हें राज्यसभा की मनोनीत सदस्यता प्रदान की गयी थी। वे मुख्यत: उपन्यासकार थे। उन्होंने चौदह उपन्यास, तीन कहानी -संग्रह, तीन कविता-संग्रह, नाटक तथा एकांकी हिन्दी साहित्य को प्रदान किए हैं।

'दो कलाकार' एक हास्य-व्यंग्य प्रधान एकांकी है। इसमें दो कलाकारों के शोषण का चित्रण मात्र नहीं अपितु कलाकारों के साहस एवं बुद्धिचातुर्य के द्वारा शोषण से मुक्त होने की बात पर बल दिया गया है। कवि चूड़ामणि एवं चित्रकार मार्तंड अनुक्रम से प्रकाशक परमानन्द तथा रईस रामनाथ एवं मकान मालिक बुलाकीदास से जमकर लोहा लेते हैं। इन सबको बारी-बारी से पराजित करते हैं। प्रस्तुत एकांकी में आशावादी संघर्ष की चेतना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ढंग से रेखांकित हुई है।

पात्र-परिचय

चूड़ामणि : एक कवि

मार्तंड : एक चित्रकार

परमानंद : एक प्रकाशक

रामनाथ : एक रईस

बुलाकीदास : मकान मालिक

स्थान : किसी बड़े नगर के एक बड़े मकान का एक कमरा।

समय : दिन में कोई समय ।

(एक बड़ा-सा कमरा। कमरे में किसी प्रकार का कोई फर्नीचर नहीं है। अंदर की तरफ कमरे के आधे भाग में तसवीरें बिखरी पड़ी हैं और दूसरे आधे भाग में पुस्तकें बिखरी पड़ी हैं। फर्श पर स्टेज के एक विंग से लेकर दूसरे विंग तक एक चटाई बिछी है। चटाई के बीचो बीच एक तकिया है, जो स्टेज के सामने न होकर दोनों विंगों के सामने हैं। तकिये को अपनी पीठ पर रखकर विंग की ओर मुँह किए एक ओर पंडित चूड़ामणि बैठे हैं और दूसरी ओर मिस्टर मार्तंड बैठे हैं। चूड़ामणि के आगे एक मोटा-सा रजिस्टर है, जिस पर वे फाउंटेनपेन से लिख रहे हैं। मार्तंड के आगे एक छोटा-सा स्टैंड है, जिस पर एक अधबनी तसवीर लगी है। मार्तंड के हाथ में एक तूली है और वह तसवीर बना रहा है।)

चूड़ामणि : (लिखते-लिखते कलम रोक कर पर उसकी आँखें रजिस्टर पर ही लगी हैं।) सुना मार्तंड! आज मैं प्रकाशक परमानंद के यहाँ गया था। वह बोला कि किताबें बिकती ही नहीं, पैसा कहाँ से आए। एक पैसा मेरे पास नहीं। और बदमाश ने कल ही एक मोटर खरीदी है।

मार्तंड : (तूली रोककर और तसवीर की ओर ध्यान से देखते हुए) भाई, यह तो बुरी सुनाई। मैं तो सोचता था कि तुम रुपए ले आए होगे, नहीं तो मैं ही लाला रामनाथ के हाथ सात रुपए में ही तसवीर बेच देता।

चूड़ामणि : (रजिस्टर पर आँखें गड़ाता है; मस्तक पर बल पड़ जाते हैं।) क्या कहा? तुम भी रुपए नहीं लाए?

मार्तंड : (चित्र पर तूली से रंग देते हुए) लाता कैसे? भला बताओ, पचास रुपए की तसवीर के अगर कोई पच्चीस तक दे, तो भी वह बेची जा सकती है। लेकिन जब कोई यह कहे कि मैं सात रुपए के ऊपर एक कौड़ी भी नहीं दे सकता, तब भला तुम्हीं बतलाओ मैं क्या कर सकता था!

चूड़ामणि : (लिखता हुआ) हुँ! ऐसी बात है! तुम्हारी जगह अगर मैं होता तो मैं उससे साफ कहता कि तुम्हारे

बाप ने भी कभी तसवीर खरीदी है कि तुम्हीं खरीदोगे- यह कहकर मैं सीधा वापस आता।

मार्तंड : (तसवीर बनाता हुआ) अच्छा होता यार कि तुम्हीं मेरी जगह वहाँ होते।

चूड़ामणि : (लिखा हुआ) तो क्या तुम बुद्धू की तरह चले आए?

मार्तंड : (तसवीर बनाना रोककर तसवीर की ओर देखता है।)

नहीं यार; मैंने तो उठने की तैयारी करते हुए सिर्फ इतना कहा - तुम चोर हो। और जब उसने सिर उठाया, तब मुझसे न रहा गया और मैंने उससे कहा - तुम उठाईगीर हो! और जब उसने मेरी तरफ देखा, तब मैं उससे इतना कहने का लालच न रोक सका और मैंने उससे कहा - तुम गिरहकट हो!

चूड़ामणि : (हँसते हुए रजिस्टर को देखता है।) बात तो तुमने बेजा नहीं कहीं।

मार्तंड : (मुस्कराते हुए तसवीर पर तूली चलाने लगता है।) नहीं, बात तो बेजा नहीं थी, लेकिन जो बात कहने के जोश में मैं यह भूल गया था कि मैं उसके घर में बैठा हूँ और उसके दस-पाँच नौकर भी हैं।

चूड़ामणि : (कलम जमीन पर ठोंकते हुए।) तो फिर तुम पिटे भी?

मार्तंड : (तूली रोककर) अगर पिटता तो भी अच्छा था; क्योंकि इधर बहुत दिनों से पिटा नहीं हूँ, लेकिन इसकी नौबत ही न आई। उसने नौकरों को आवाज दी और चार आदमी कमरे में घुस आए। उसने कहा - मारो! और मैं समझा कि मुझसे कह रहा है। लिहाजा मैंने ताना घूँसा, और वह बैठा था सामने। सो घूँसा ठीक उसकी नाक पर पड़ा।

चूड़ामणि : (चौंककर हाथ ऊपर उठाते हुए) वेल डन! शाबाश!

(फिर लिखने लगता है।) लेकिन तुम बच कैसे आए?

मार्तंड : (तूली नीचे रखते हुए) यह बात हुई कि नौकरों ने सँभाला उसे, और मैं तसवीर उठाकर वहाँ से भागा। लोग ले-दे करते ही रहे - और मैंने सीधे घर पहुँचकर साँस ली।

(कुछ रुककर) लेकिन आएगा वह जरूर! गलती से मैं अपनी तसवीर की जगह उसके बाप की तसवीर, जो उसी दिन विलायत से बनकर आई थी, उठा लाया हूँ।

चूड़ामणि : (लिखते हुए) खैर चिंता न करो। मैं परमानंद की सोने की घड़ी उठाकर यह कहता भागा कि अगर दो-घंटे के अंदर रुपया न दिया तो घड़ी मैं बेच दूँगा।

(जेब से घड़ी निकालकर वह देखता है। बाहर से दरवाजा पीटने की आवाज आती है। दोनों अपना काम रोककर दरवाजे की ओर देखते हैं।)

आवाज : चूड़ामणि जी!

मार्तंड : नहीं हैं। (मुँह फेरकर तसवीर बनाने लगता है।)

आवाज : मार्तंड जी!

चूड़ामणि : नहीं हैं। (मुँह फेरकर लिखने लगता है।)

आवाज : आप दोनों मौजूद हैं। किवाड़ खोलिए।

दोनों : नहीं खोलेंगे।

आवाज : हम दरवाजा तोड़ देंगे।

चूड़ामणि : बड़ी खुशी से! आपका दरवाजा है।

मार्तंड : और अपनी चीज अगर आप तोड़ें तो भला हम रोकने वाले कौन होते हैं?

आवाज : हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि दरवाजा खोलिए।

चूड़ामणि : किससे? चूड़ामणि से या मार्तंड से?

आवाज : दोनों से।

मार्तंड : दरवाजा खोलने का काम सिर्फ एक आदमी ही कर सकता है।

आवाज : अगर आप लोग दरवाजा नहीं खोलते - तो मैं बाहर से ताला बंद किए देता हूँ।

चूड़ामणि : ऐसी हालत में दरवाजा हमें तोड़ना पड़ेगा।

मार्तंड : और नुकसान आपका होगा।

आवाज : मार्तंड जी, आपसे प्रार्थना करता हूँ कि दरवाजा खोलिए।

मार्तंड : हाँ, अब तुमने बात ढंग की की। (मार्तंड उठकर जंजीर खोलता है। बुलाकीदास का प्रवेश। मार्तंड जंजीर खुली छोड़कर लौटता है और अपनी जगह बैठकर तसवीर बनाने लगता है।)

बुलाकीदास : (बीच कमरे में खड़े होकर) छह महीने हो गए। मुझे किराया चाहिए।

(दोनों चुप रहते हैं।)

बुलाकीदास : आप लोग सुनते हैं?

चूड़ामणि : (बुलाकीदास की ओर मुड़कर) कृपा करके आप बात मार्तंड जी से करें।

बुलाकीदास : क्यों? आपसे क्यों नहीं?

चूड़ामणि : इसलिए कि आपने किवाड़ खुलवाया है मार्तंड से, मेरा किवाड़ अभी बंद है। लिहाजा आपको मुझसे बात करने का कोई अधिकार नहीं।

(लिखने लगता है।)

बुलाकीदास : मैं आप दोनों से कहता हूँ कि जब से आप लोग इस कमरे में आए हैं, तब से आप लोगों ने एक पैसा भी नहीं दिया। छह महीने हो गए। पच्चीस रुपए के हिसाब से डेढ़ सौ रुपए होते हैं।

चूड़ामणि : (लिखना बंद करके बुलाकीदास की ओर घूमता है।) बिलकुल झूठ! आपके नाती के मुंडन के निमंत्रण-पत्र पर मंगलाचरण की कविता मैंने लिखी थी, एक महीने का किराया यह अदा हुआ। (चूड़ामणि फिर लिखना शुरू कर देता है, बुलाकीदास आश्चर्य से चूड़ामणि की ओर देखता है।)

मार्तंड : (तेजी से घूमकर) और आपको पूजा करने के लिए राधाकृष्ण की तसवीर मैंने बना दी थी। दूसरे महीने का किराया वह अदा हुआ। (यह कहकर तसवीर बनाने लगता है। बुलाकीदास आश्चर्य से मार्तंड को देखता है।)

चूड़ामणि : (घूमकर) आपके छोटे लड़के के विवाह पर मैंने कवि-सम्मेलन करवा दिया था। तीसरे महीने का किराया वह अदा हुआ। (कहकर लिखने लगता है। बुलाकीदास आश्चर्य से चूड़ामणि को देखता है।)

मार्तंड : (घूमकर) जन्माष्टमी में आपके मंदिर की झाँकी मैंने सजवा दी थी। चौथे महीने का किराया वह अदा हुआ। (कहकर तसवीर बनाने लगता है। बुलाकीदास आश्चर्य से मार्तंड को देखता है, फिर कुछ चुप रहकर)

बुलाकीदास : अजी वाह! इतने जरा-जरा-से काम के रुपए? वह तो आपने अपनेपन में कर दिया था।

मार्तंड : (तसवीर बनाता हुआ) हमने काम तो किया, आप तो बिना काम किए हुए ही रुपया माँगते हैं।

चूड़ामणि : (लिखता हुआ) और आप भी अपनेपन में किराया जाने दीजिए।

बुलाकीदास : आप लोग अजीब तरह के आदमी हैं। अच्छा यह चार महीने का किराया हुआ। अब दो महीने का किराया दीजिए और मकान खाली कीजिए।

चूड़ामणि : (घूमकर) संसार का एक महाकवि आपके इस चिड़ियाखानेनुमा मकान में रहा। पाँचवें महीने का किराया वह अदा हुआ।

मार्तंड : (घूमकर) संसार का एक श्रेष्ठ चित्रकार आपके इस जानवरों के रहने के काबिल मकान में रहा, छठे महीने का किराया वह अदा हुआ। (परमानंद का प्रवेश। उन्हें देखते ही चूड़ामणि उठ खडा होता है।)

चूड़ामणि : आइए परमानंद जी, पधारिए, आपका स्वागत है। अभी-अभी आपकी कीर्तिकथा पर एक पुराण आरंभ किया है। (बैठकर पढ़ता है।)

झूठ, दगाबाज़ी, मक्कारी, दुनिया के जितने छल-छंद, नहीं बचे हैं इनसे कोई, धन्य प्रकाशक परमानंद! इसीलिए हम लिखने बैठे लंबा-चौड़ा एक पुराण...

परमानंद : (हाथ जोड़ता है।) चूड़ामणि जी, अब बस कीजिए। मैं आपके रुपए लाया हूँ।

चूड़ामणि : (घूमकर) अच्छा! रुपए लाए हैं।

(मुसकराता हुआ रजिस्टर की कविता काटता है।) तो यह पुराण लिखना बंद किए देता हूँ। (परमानंद जेब से कुछ नोट निकालकर देता है। चूड़ामणि बैठे-ही-बैठे नोट लेकर बिना गिने उन्हें अपनी जेब में रख लेता है।)

परमानंद : अच्छा, अब मेरी घड़ी?

चूड़ामणि : (आश्चर्य से परमानंद को देखता है।) तो आप घड़ी वापस ले जाएँगे?

परमानंद : जी हाँ।

चूड़ामणि : बहुत अच्छा। (बाएँ हाथ से घड़ी निकालकर परमानंद को देता है, दाहिने हाथ से रजिस्टर पर लिखता है।) यह लीजिए अपनी घड़ी और यह शुरू हुआ परमानंद पुराण। उनकी बीबी मना रही है हो जाए वह जल्दी बेवा!

परमानंद : (हाथ जोड़ते हुए) नहीं, नहीं, यह घड़ी मेरी ओर से आपको भेंट है।

(चूड़ामणि घड़ी वापस लेता है। इसी समय लाला रामनाथ का प्रवेश। लाला रामनाथ के हाथ में एक चित्र है। मार्तंड उठ खड़ा होता है।)

मार्तंड : आइए, पधारिए लाला रामनाथ साहब! कैसे कष्ट करना पड़ा?

रामनाथ : मार्तंड जी! आप अपनी तसवीर की जगह मेरे पिता जी का चित्र ले आए हैं। यह लीजिए और मेरे पिता जी का चित्र वापस कीजिए।

मार्तंड : अरे हाँ, बड़ी गलती हो गई, मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। (बगल से चित्र उठाकर रामनाथ को देता है।) यह लीजिए अपने पिता जी का चित्र।

रामनाथ : (चित्र देखता है, फिर क्रोध में) यह आपने क्या किया? नाक गायब कर दी?

मार्तंड : लाला जी, नाक तो आपने अपने पिता जी की कटवा दी। पचास रुपए के चित्र के दाम सात रुपए लगाकर! (मार्तंड सब लोगों की ओर घूमता है।) आप लोग जानते हैं- ये हैं लाला रामनाथ। आपके पिता बड़े दानी थे, बड़े पुण्यात्मा थे और आप, उनके सुपुत्र ने उनकी नाक कटवा दी। आपकी तारीफ...

रामनाथ : (बात काटकर) अच्छा, अच्छा! यह तसवीर मैंने ले ली। यह लीजिए पचास रुपए और यह तसवीर ठीक कर दीजिए। (रामनाथ मार्तंड को नोट देता है। मार्तंड बिना गिने ही नोट अपनी जेब में रख लेता हैं, फिर रामनाथ के हाथ से चित्र लेकर तूली से नाक ठीक कर देता है।)

मार्तंड : यह लीजिए उनकी नाक सही सलामत वापस आ गई। (रामनाथ चित्र लेकर जल्दी-जल्दी जाता है और पीछे-पीछे परमानंद जाता है।)

बुलाकीदास : अब आपके पास रुपए आ गए हैं। किराया अदा कर दीजिए।

चूड़ामणि : कह तो दिया कि किराया हम लोग दे चुके। अब जब चढ़ेगा तब ले लेना।

बुलाकीदास : किराया चढ़ने की नौबत ही न आएगी। आप लोग अभी यह मकान खाली कीजिए।

मार्तंड : बुलाकीदास, हम आपकी तसवीर बनाकर प्रदर्शनी में भेजेंगे और आपकी उस तसवीर में आपकी नाक का होना या न होना हमारे इस मकान में रहने या इस मकान से जाने पर निर्भर है।

चूड़ामणि : और अगर हम इस मकान से गए तो परमानंद पुराण को हम बुलाकी पुराण बना देंगे। समझे!

बुलाकीदास : आप दोनों बड़े बदमाश हैं। हम आप लोगों को समझ लेंगे।

(तेजी से जाता है। चूड़ामणि उठकर दरवाजा बंद करता है। फिर अपनी जगह बैठकर लिखने लगता है। मार्तंड चित्र बनाने लगता है।)

(पटाक्षेप)

⊙

3 दुश्मन को अपना हृदय जरा देकर देखो

गोपालदास सक्सेना नीरज
(जन्म : सन् 1925)

नीरज का जन्म पुरावली गाँव ज़िला इटावा (उ.प्र.) में हुआ था। उन्होंने काम करते-करते हिन्दी साहित्य में प्रथम श्रेणी में एम.ए. किया। उन्होंने मेरठ कॉलेज में हिन्दी प्रवक्ता के पद पर कुछ समय तक अध्यापन कार्य किया। इसके बाद अलीगढ़ के धर्म समाज कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हुए। यहीं पर स्थायी निवास बनाकर रहने लगे। कवि संमेलनों में उन्हें अपार लोकप्रियता प्राप्त हुई। वे बम्बई के फिल्म जगत में 'नई उमर की नई फसल' नामक फिल्म के 'कारवाँ गुजर गया....' गीत से बहुत प्रसिद्ध हुए । उनके गीत कई फिल्मों में वर्षों तक जारी रहे। बम्बई से बहुत जल्द उनका मन उचट गया और फिल्म नगरी को अलविदा कहकर मुक्त जीवन व्यतीत करने अलीगढ़ लौट आये।

उन्होंने 17 कविता संग्रह तथा गीत संग्रह लिखे। उन्हें 'पद्मश्री' एवं 'पद्मभूषण' सम्मान से सम्मानित किया गया। उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें भाषा संस्थान का सदस्य नामित किया था।

प्रस्तुत गीत में शक्ति और महानता का निरूपण है। प्रेम में तलवारों और बमों से अधिक ताकत होती है। शत्रुओं को पशुबल से ही नहीं जीत सकते, स्नेह की शक्ति से जीत सकते हैं। स्नेहपूर्ण व्यवहार करके हम सबके साथ प्यार बाँट सकते हैं। विश्व युद्धों की ज़हरीली छाया से बच सकता है। अमन और चैन के गीत चारों ओर गूँज सकते हैं। यही आशावाद यहाँ व्यक्त हुआ है।

यह नफरत की बारूद न बिखराओ साथी!
यह युद्धों का जहरीला नारा बंद करो,
जो प्यार तिजोरी-सेफों में है तड़प रहा
उसके बंधन खोलो, उसको स्वच्छंद करो!
मृत मानवता जिंदगी माँगती है तुमसे
दो बूँद स्नेह की उसके प्राणों में ढालो,
आदम का जो यह स्वर्ग हो रहा है मरघट
जाओ ममता का एक दीया उसमें बालो!

निर्माण घृणा से नहीं, प्यार से होता है;
सुख-शांति खड्ग पर नहीं, फूल पर चलते हैं,
आदमी देह से नहीं, नेह से जीता है,
बमों से नहीं, बोल से बज्र पिघलते हैं।
तुम डरो न, आगे आओ निज भुज फैलाओ
है प्यार जहाँ, तलवार वहाँ झुक जाती है,
पतवार प्रेम की छू जाए जिस किश्ती को
मँझधार पार उसको खुद पहुँचा आती है।

जिसके अधरों पर गीत प्रेम का जीवित है
वह हँसकर तूफानों को गोद खिलाता है,
जिसके सीने में दर्द छिपा है दुनिया का
सैलाबों से बढ़कर वह हाथ मिलता है।
कितना ही क्यों न बड़ा हो घाव हृदय में, पर
सच कहता हूँ यह प्यार उसे भर सकता है,
कैसा ही बागी-दुश्मन हो आदमी मगर
बस एक अश्रु का तार कैद कर सकता है।

कितना ही ऊबड़-खाबड़ हो रास्ता किंतु
यह प्यार फूल-सा तुम्हें उठा ले जाएगा,
कैसी ही भीषण अँधियारी हो धुआँधुंध
पर एक स्नेह का दीप सुबह ले आएगा।

मैं इसीलिए अक्सर लोगों से कहता हूँ,
जिस जगह बँटे नफरत, जा प्यार लुटाओ तुम
जो चोट करे तुम पर उसके चूम लो हाथ,
जो गाली दे उसको आशीष पिन्हाओ तुम

तुम शांति नहीं ला पाए युद्धों के द्वारा
अब फेंक जरा तलवार, प्यार लेकर देखो,
सच मानो निश्चय विजय तुम्हारी ही होगी
दुश्मन को अपना हृदय जरा देकर देखो।

4 मैं एक मजदूर

फूलचंद गुप्ता
(जन्म : सन् 1958 ई.)

हिन्दी के प्रगतिशील कवि फूलचंद गुप्ता का जन्म उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के अमराई गाँव में हुआ था। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा गाँव के सरकारी स्कूल से प्राप्त की। इसके अलावा एम.ए. (अंग्रेजी), एम.ए. (हिन्दी) गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद से, पी.एच.डी. वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत से और पी.जी. डिप्लोमा इन जर्नालिज्म भारतीय विद्याभवन, अहमदाबाद से किया। संप्रति वे साबर ग्राम सेवा महाविद्यालय सोनासन, जिला साबरकांठा में अंग्रेजी के अध्यापक हैं। वे इस समय हिंम्मतनगर में रह रहे हैं।

'इसी माहौल में', 'हे राम', 'साँसत में हैं कबूतर', 'कोई नहीं सुनाता आग के संस्मरण', 'राख का ढेर', 'कोट की जेब से झाँकती पृथ्वी', 'दीनू और कौवे', 'झरने की तरह', 'फूल और तितली' आदि इनके कविता-संग्रह हैं। 'ख्वाब ख्वाहों की सदी है' एवं 'आरजू-ए-फूलचंद' उनके गजलसंग्रह हैं। 'प्रायश्चित नहीं प्रतिशोध' उनका कहानी-संग्रह है। अंग्रेजी और गुजराती में एक-एक पुस्तक के अलावा उन्होंने गुजराती से हिन्दी में कई पुस्तकों के अनुवाद किए हैं। फूलचंदजी को प्रगतिशील लेखन के लिए सफदर हाश्मी सम्मान, गुजरात साहित्य अकादमी पुरस्कार, अरावली शिखर सम्मान प्राप्त हैं।

प्रस्तुत कविता में कवि के सृजनशील व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। मानवीय करुणा से भरा हुआ इस कविता का काव्य-नायक समस्त सृजन के मूल में मेहनतकश वर्ग को देखता है। पत्थर से मूर्ति बनानेवाला और काष्ठ, लोहे तथा कपास को मनुष्योपयोगी वस्तुओं में तब्दील करनेवाला नायक एक कलाकार है, जो संसार से बुराइयों को दूर कर हर प्रकार के सौंदर्य की रचना करता है।

पत्थर को देखते ही
मेरे भीतर जन्म लेता है संगतराश
काष्ठ के सामने मैं बढ़ई बन जाता हूँ
लोहे को देखते ही कसमसाने लगता है मेरे भीतर
एक लुहार
घन और हथौड़े के साथ
कपास की लहलहाती खेती में पाँव रखते ही
मैं बुनकर में तब्दील हो जाता हूँ

मिट्टी के हर ढेले में मुझे
मूर्ति के दर्शन होते हैं
हर धातु के स्पर्श में मुझे अनुभूति होती है
धार की
मैं शाश्वत शिक्षक
हर मासूम में मुझे सर्जक दिखाई देता है
मैं एक मजदूर, एक कारीगर
एक कलाकार हूँ
मुझे हर कच्ची चीज में
सौंदर्य दिखाई देता है!

⊙ ⊙ ⊙